Vol. 14
Issue 1&2
15July 2023
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
शोध संचयन

# मीडिया के वाणिज्यिक मनोविज्ञान की साहित्यिक अभिव्यक्तिः प्रवीण कुमार की लंबी कहानी छबीला रंगबाज का शहर

**बीज शब्द :**

*पत्रकारिता, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, फेक न्यूज, छबीला, ऋषभ, तन्वी, सनसनी, सिटी चैनल, अपराधी, हत्या, बिहार में पत्रकारिता, मीडिया का वर्तमान परिदृश्य आदि।*

भारतीय पत्रकारिता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि वह सच, ईमानदारी और निष्पक्षता का जीता जागता उदाहरण रही है, परंतु भूमंडलीकृत हुई इस दुनिया में आज की पत्रकारिता में स्वार्थलोलुपता, बाजारीकरण और सत्ता की पैरोकारी अपने पूरे मकड़जाल के साथ घुस चुकी है। साफ लफ्जो में कहें तो पत्रकारिता अब एक धंधा बन चुकी है। पत्रकारिता के इस निकृष्ट चरित्र को प्रवीण कुमार ने अपनी लंबी कहानी 'छबीला रंगबाज का शहर' में कथा के माध्यम से उसकी साहित्य अभिव्यक्ति की है। कहानी में उन्होंने दिखाया है कि पत्रकारिता आज सनसनी फैलाने में और फेक न्यूज परोसने में किस कदर लिप्त हो चुकी है। कहानी का प्रमुख पात्र छबीला जो कि एक मासूम बच्चा है, उसे इस व्यावसायिक पत्रकारिता ने अपने स्वार्थ के लिए एक खूंखार अपराधी घोषित कर दिया है। प्रवीण कुमार के अनुसार वर्तमान दौर में पत्रकारिता सूचनाओं का आदान-प्रदान नहीं कर रही बल्कि मनोरंजन और सनसनी का पर्याय बन चुकी है।

*****

**डॉ० संतोष कुमार पांडेय**
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
फीरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली
ईमेल drskpandeyfgc1977@gmail.com

# मीडिया के वाणिज्यिक मनोविज्ञान की साहित्यिक अभिव्यक्तिः प्रवीण कुमार की लंबी कहानी छबीला रंगबाज का शहर

वर्तमान समय में संचार मानव जीवन की आवश्यकता है क्योंकि आज की दुनिया इसी पर टिकी हुई नजर आती है। पूरी दुनिया के साथ ही साथ भारत भी संचार के वेगवान, बेलगाम घोड़े पर सवार अनंत की यात्रा पर निकल चुका है। भूमंडलीकृत हुई इस दुनिया में मीडिया- साम्राज्यवाद का बोलबाला और दबदबा बड़ी बेहतरी से नजर आने लगा है। भूमंडलीय संस्कृति की यही खूबी है कि वह दूरियां तो तय करके आई है किंतु उपभोक्ता के आवागमन के मार्ग में सहज और सस्ते भाव पर उपलब्ध है। आज मीडिया जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन चुका है। अपनी देश-सेवा के जरिए वह हमारी सांस्कृतिक विरासत को धीरे से चूना भी लगा रहा है, नए विमर्शों का निर्माण भी कर रहा है क्योंकि इसके केंद्र में उपभोक्ता है और पूरे बाजार की नजर उसी की ओर लगी हुई है ।

भारत में स्वतंत्रता से पहले सिर्फ प्रिंट मीडिया ही अस्तित्व में था और उसका एक सामाजिक राष्ट्रीय उद्देश्य था, परंतु आजादी के बाद पत्रकारिता में व्यवसाय का बोलबाला शुरू हो गया और पत्रकारिता मीडिया में बदलते ही एक उद्योग हो गई। मिशन से व्यवसाय और प्रेस से मीडिया यह रूपांतरण इसकी व्यावसायिकता का जबरदस्त उदाहरण है व्यावसायिक पत्रकारिता की कोई कसौटी नहीं रह गई है, यह पेशा पूरी तरह से धंधा बन चुका है जिसका एकमात्र उद्देश्य मुनाफा है।[1]

भारतीय सांस्कृतिक मान मूल्यों को मीडिया के वाणिज्यिक मनोविज्ञान ने विकृत कर रखा है और यह विकृति अपने चरम पर है। इसी विकृति का सबसे प्रत्यक्ष और प्रभावी उदाहरण है विभिन्न प्रकार के अश्लील और अपसंस्कृति से सराबोर विज्ञापन। ये विज्ञापन मीडिया का मुंह बंद करने या अपने जैसा चलने के लिए बेहिसाब पैसा देते हैं, इस तरह से मीडिया मस्त और संस्कृति पस्त का खेल लगातार चलता रहता है। पत्रकारिता के अधिकारी विद्वान रामशरण जोशी लिखते हैं कि 15 अगस्त 1947 के पश्चात हिंदी पत्रकारिता के चरित्र में भी बदलाव आया क्योंकि अब भारतीय पत्रकारिता के समक्ष स्वतंत्रता प्राप्ति की चुनौती नहीं रह गई थी अतः इसका चरित्र धीरे-धीरे व्यावसायिक होता चला गया। प्रतिष्ठित अखबार समूह जैसे टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्तान टाइम्स आदि ने अपने यहां से हिंदी में दैनिक साप्ताहिकों का प्रकाशन प्रारंभ किया। वे आगे लिखते हैं कि आपातकाल के लागू हो जाने से मुख्यधारा की पत्रकारिता काफी हद तक समझौतावादी बन गई इसके चरित्र में कई प्रकार की फिसलन आती चली गई और भारत की पत्रकारिता उत्तरोत्तर धंधा करण की चपेट में आती चली गई'।[2]

प्रख्यात आलोचक डॉक्टर रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इस संबंध में लिखा है कि 'यह साहित्य के लिए दुर्दिन ही माना जाएगा जब कलाओं से हटकर उसकी तुलना और प्रतिद्वंद्विता संचार माध्यमों से आ ठनी है। समाचार पत्रकारिता से प्रतिक्रिया में हिंदी लेखक ने कुछ खोया है तो कुछ पाया भी है। समाचार फीचर पत्रकारिता के संपर्क में साहित्य की कई नई संभावनाओं के खुलने के बावजूद पत्रकारिता का संस्पर्श साहित्य के लिए कुल मिलाकर हितकर सिद्ध नहीं हुआ। दूरदर्शन वस्तुतः औद्योगिक युग का लोक साहित्य है। पारंपरिक लोक साहित्य खेती किसानी के युग में विकसित हुआ था यह नया लोक साहित्य औद्योगिकी से जुड़कर विकसित हुआ है, पर कृषि युग के लोक साहित्य से इसका बुनियादी अंतर यह है कि इसमे लय का एकांत अभाव है। लय के स्थान पर यहां कौतूहल और अजूबे के सहारे दर्शक के लिए एक तरह का नशा तैयार किया जाता है। जो अंतर योगसाधना और मादक औषधियों के सहारे उत्पन्न तन्मयता के बीच है कुछ वैसा ही अंतर लोक साहित्य की तन्मयता और दूरदर्शन के व्यसन के बीच है, तब स्पष्ट ही दूरदर्शन कला का संचार करने के यत्न के बावजूद कला और साहित्य का प्रतिपक्ष है'।[3]

पत्रकारिता समाज में ऊर्जा भरने, सूचना देने, जन जागरण करने, मानव समाज की विभिन्न गतिविधियों के विवरण, विश्लेषण, मूल्यांकन एवं प्रस्तुतीकरण का सबसे विश्वसनीय माध्यम है। परिस्थितियों के अध्ययन, चिंतन, मनन और आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति तथा बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के प्रति व्यग्रता ने पत्रकारिता को जन्म दिया।[4] विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका लोकतंत्र के तीन आधारभूत स्तंभ हैं। संविधान में इनके अधिकार परिभाषित हैं फिर खबरपालिका को चौथा स्तंभ क्यों कहा जाने लगा? संविधान में तो ऐसा कहीं नहीं लिखा है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रसिद्ध पत्रकार विजयदत्त श्रीधर लिखते हैं कि 'भारत के नवजागरण में राजनैतिक आजादी, आर्थिक स्वावलंबन, समाज सुधार, शैक्षिक उन्नयन आदि सभी आंदोलनों को जन-जन तक ले जाने और निर्णायक परिणति तक पहुंचाने में पत्रों और संपादकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस दौर के ये सभी संपादक स्वतंत्रता सेनानी थे, समाज सुधारक थे, स्वदेशी और स्वावलंबन के लिए लड़ रहे थे, और समाज में ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का प्रकाश चतुर्दिक फैलाने के लिए सन्नद्ध थे। संकल्प और संघर्ष उनकी पूंजी थी, जेल और जुर्माना उनके पुरस्कार थे और गृहस्थी में रहते हुए माया-मोह से निर्लिप्त बने रहना उनका

आचरण था। लगभग पौने दो सौ साल के कालखंड में उनका यह लोक व्यवहार उनके प्रति आदर और विश्वास का कारण था। ऐसी गरिमामयी पृष्ठभूमि ने पत्रकारिता को चौथे स्तंभ की मान्यता प्रदान की'।[5]

इस चौथे स्तंभ को प्रवीण कुमार ने अपनी लंबी कहानी 'छबीला रंगबाज का शहर' में छिन्न-भिन्न होते दिखाया है। साथ में यह भी कि अपराधियों से गठजोड़ तथा बाहुबलियों की गिरफ्त में आई मीडिया ने अपने चरित्र को किस प्रकार से बदल डाला। प्रवीण कुमार ने जिस परिवेश को इस कहानी में उठाया है वह बिहार प्रांत के आरा जिले का है, जिसे शाहाबाद भी कहते हैं। बकौल प्रवीण कुमार 'इस शहर को जैन मुनियों ने ही बसाया था। जैनियों के बाद इस शहर को मुगलों ने सजाया शाहाबाद नाम देकर, फिर बाबू कुंवर सिंह, फिर अंग्रेजों ने और अब इस शहर का भूमंडलन हो रहा है'।[6] यही शहर है जो छबीला रंगबाज का शहर है। इस कहानी में यही शहर नायक है। इसके केंद्र में कोई विशेष पात्र नहीं है बल्कि समूचा शहर है जो अपनी सामंतीसोच, वर्णवाद, जातिवाद, पाखंड, भ्रष्टाचार, शोषण, मीडिया की मनमानी और उसकी सनसनी से त्रस्त है। हालांकि इस शहर में जैन स्थापत्य हैं, जमीनें हैं, पर शहर के जीवन में दर्शन का सम्यक जीवन नहीं है'।[7]

इस शहर की टूटन को प्रवीण कुमार ने बड़ी ही संजीदगी से प्रतीकों के माध्यम से बयान किया है वे लिखते हैं। 'वर्धमान महावीर की भग्नावशेष दिगंबर मूर्ति, लग रहा था उस पर कई बार पत्थरों से प्रहार किया गया हो ...नीचे दोनों खंभों पर लिखा था प्राचीन शहर में आपका स्वागत है। स्वागत लिखे गए शब्द पर किसी स्थानीय लीडर का पोस्टर आधा चिपका पड़ा था'[8] यह शहर अपने प्राचीन काल में अत्यंत श्वेत-वर्ण था धीरे-धीरे कालिमा ने अपना कब्जा जमाना शुरू किया और आज शहर में सिर्फ काली करतूतें ही नजर आती हैं। यह काली करतूत मीडिया की है। प्रसिद्धि और टीआरपी के खेल ने मीडिया को नंगा करके रख दिया है। यहां की मीडिया यहां के समाचार पत्र सब सनसनी ढूंढते फिरते हैं। पत्रकारिता गई तेल लेने। बस सूचनाएं एकत्र करो, उन्हें उल्टे सीधे किसी भी तरीके से ढूंढो, फिर उन पर मिर्च मसाला लगाओ, मनोरंजनात्मक बनाओ और फैला दो एक सनसनी। असल में प्रवीण कुमार इस कहानी में पत्रकारिता की अनेकानेक समस्याओं को उठाते हुए नजर आते हैं जैसे इस कहानी में अनूप नाम का एक पत्रकार है जिसके बारे में बात करते हुए प्रवीण कुमार लिखते हैं "अनूप आज का पत्रकार बन गया यानी सूचना की जगह मनोरंजन पर आ गया।"[9] शहर का प्रिंट मीडिया फिर भी कुछ हद तक पत्रकारिता के उच्च मानदंडों पर चल रहा था, लेकिन इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपनी सनसनी और कमाऊ छवि के चलते अपने को कोठे पर बैठा चुकी थी। ऐसा नहीं कि यह सब अचानक हो गया था इस शहर में। चीजें धीरे-धीरे कैसे बदलीं यह प्रवीण कुमार से ही सुनिए 'यह तब की बात है जब शहर में चकाचौंध जैसी एक चीज घुस चुकी थी, लोग रंगीन चैनलों और दर्जनों बटन वाले रिमोट का आत्मसातीकरण कर रहे थे उसी समय में जगतानंद ने क्रांति शुरू करनी चाही 'द सिटी चैनलों' की शक्ल में।"[10]

सेठों की जागीर बना इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने आप को बड़े बड़े राष्ट्रीय चैनलों से तुलना करने लगा। जगतानंद ने देखा कि बिना सनसनी फैलाये मेरे चैनलों को लोग तवज्जो नहीं देंगे इसलिए उसने धन और बल का प्रयोग करते हुए चुनिंदा तथाकथित पत्रकारों को सनसनी खोजने में लगा दिया। यह वही दौर था 'जब तन्वी कॉरेस्पॉन्डेंस बनकर टीवी पर खुद को देखने का सपना पाले हाथ-पैर मार रही थी।"[11] सिटी चैनल अपने विकास की राह पर आगे बढ़ता ही जा रहा था लेकिन रोज रोज सनसनी फैलाना आसान नहीं था। इसलिए अपने न्यूज चैनलों को अधिक टीआरपी और प्रसिद्धि दिलाने के लिए जगतानंद एक शातिराना योजना बनाता है जिसके अनुसार एक दिन सेठ शमशान में पूरा रंगमंच तैयार करवाता है। नई नवेली पत्रकार तन्वी, किराये का एक आदमी भुजंग नाथ और चैनलों का मालिक जगतानंद सेठ यह सारे लोग मिलकर 'अघोरी बाबा' शीर्षक से एक सीन शूट करते हैं, जिसमें मुर्दाघाट पर भुजंगनाथ लाशों के साथ बैठकर मांस और मदिरा पान करता है। बस फिर क्या था 'अगले दिन सुबह से ही 'द सिटी चैनलों' ने हंगामा बरपाना शुरू कर किया। देखते-देखते इस शहर का 'अघोरी नंबर वन' शीर्षक हिट कर गया। दोपहर होते-होते शहर ने तन्वी को बरखा दत्त सम्मान से नवाज दिया और भुजंग नाथ अघोरी नाथ के रूप में सम्मानित किए गए'।[12]

यह वही दौर था जब मीडिया में फेक न्यूज का बोलबाला शुरू हुआ था, और आज मीडिया में आधे से अधिक न्यूज फेक ही आ रही है जो मीडिया और पत्रकारिता जगत के लिए बेहद चिंतनीय स्थिति है। मीडिया विशेषज्ञ श्री विजय दत्त श्रीधर लिखते हैं कि "21वीं सदी का मीडिया फेक न्यूज के संकट का सामना कर रहा है। फेक न्यूज जहां पाठकों श्रोताओं दर्शकों के साथ निहायत कपटपूर्ण व्यवहार है वहीं पेड न्यूज घोर विश्वासघात है। आर्थिक उदारीकरण और संसारी करण के गर्भ से इसका जन्म हुआ है।"[13]

इस तरह मीडिया की सनसनी और फेक न्यूज दोनों ने मिलकर शहर और तन्वी दोनों को परवान चढ़ा दिया। देखते

ही देखते तन्वी की ब्रांडिंग हो चुकी थी वह राज्य के एक बड़े टीवी-न्यूज-चौनल पर एंकरिंग करने लगी। इस कहानी में एक मोड़ ऐसा आता है कि जब फर्जी खबरों के चलते छबीला जैसे मासूम बच्चे को जिसका परिवार दाने-दाने को मोहताज है, जिसकी मां के साथ बदसलूकी होती है, जिसके ऊपर से पिता का साया उठ चुका है उस छबीला को रंगबाज बनाने में मीडिया अपनी पूरी ताकत लगा देती है, वो भी सिर्फ इसलिए कि उसे सनसनी फैलाने में ही मजा आता है। कोई भी वारदात हो मीडिया उसमें छबीला को घसीट ही लेती है। मीडिया ट्रायल के आधार पर एक दिन छबीला को बाल सुधार गृह भेज दिया जाता है। वहां की हैवानियत से तंग छबीला बाउंड्री लांघ कर फरार हो जाता है। संयोग से उसी बीच रणसेना के संस्थापक मुखिया जी की उन्हीं के गुटबाजों द्वारा हत्या कर दी जाती है और फिर से मीडिया अपनी सनसनी फैलाने के लिए छबीला का नाम घसीट ही लेती है। न्यूज चैनलों पर बहस छिड़ जाती है, रिपोर्टर्स पूरी तल्लीनता से सनसनी फैलाने लगते हैं। इसी सनसनी की माहिर तन्वी रिपोर्टिंग कर रही है- "टीवी स्क्रीन पर हम दर्शकों को बता दें कि जीवेश्वर मुखिया की हत्या का संदेह जिन लोगों पर किया जा रहा है उनमें से एक कुख्यात नाम छबीला सिंह का भी है'।[14]

छबीला जो कि एक मासूम था जिसने कोई अपराध किया ही नहीं था उसको बिहार की पुलिस और बिहार की पत्रकारिता ने एक नया विशेषण दे डाला था। अखबार ने छबीला को रंगबाज से नवाजा। अपराध खत्म अपराध बोध भी।"[15] छबीला को बड़ा ताज्जुब हो रहा था कि उसने जो छोटे-मोटे अपराध या कारस्तानी अब तक की है उनमें से कोई भी केस की शक्ल में दर्ज ही नहीं हुआ था। लेकिन यही तो कमाल है व्यवसायिक पत्रकारिता का कि अगले दिन का राष्ट्रीय अखबार छबीला रंगबाज के नाम से समर्पित था।16 ऐसी टुच्ची पत्रकारिता और मीडिया को प्रवीण कुमार ने अपनी कहानी में जमकर धोया है और जहां भी मौका मिला है मीडिया की बखिया उधेड़ने में प्रवीण कुमार में कोई कोताही नहीं की है।

कहानी आगे बढ़ती है, जीवेश्वर मुखिया की हत्या पर टेलीविजन पर एक बहस चल रही है जिसे तन्वी संचालित कर रही है। शहर को कवर करने वाला पत्रकार रिपोर्टिंग कर रहा है। पत्रकार की इतिहास दृष्टि कुछ-कुछ सबाल्टर्न वाली थी। उसने यह कहीं नहीं बोला कि इस शहर को जैन मुनियों ने बसाया, फिर मुगलों ने, फिर अंग्रेजों ने सजाया, दरअसल पत्रकार की इतिहास दृष्टि शहर के कुख्यात अपराधियों से शुरू हुई जो मारे जा चुके थे, या फरार थे या फिर जेल में बंद थे। दाढ़ीजार पत्रकार की भाषा ऐसी थी कि देश की जनता शायद ही भरोसा कर लेगी कि इस शहर की माएं बेटों के साथ-साथ उनकी रक्षा के लिए कवच कुंडल के रूप में एक देसी कट्टा और कम से कम दो गोली जरूर पैदा करती होंगी।[17]

यही है व्यावसायिक मीडिया की भूख जो उसे हैवान बना देती है। बिहार का नाम पत्रकारिता ने भी डुबो दिया था। यह वही बिहार है जिसकी पत्रकारिता के बारे में विजय भास्कर लिखते हैं कि बिहार में पत्रकारिता का इतिहास सब तरह के अभाव से जूझने और उससे हिम्मत नहीं हारने का इतिहास है। उन्नीसवीं सदी के नवजागरण के साथ बंगाल में जागरूकता की जो बयार बही उसका असर थोड़े समय बाद बिहार में देखने को मिला। नवजागरण ने अभिव्यक्ति के लिए नए द्वार खोले, अभिव्यक्ति की यह कोलाहल जितनी तल्ख अंग्रेजी और हिंदी में थी उससे कम तल्ख मैथिली भोजपुरी या मगही में नहीं थी, इसलिए मैथिली भोजपुरी या मगही में पत्रकारिता का इतिहास जितना समृद्ध है वर्तमान उतना ही बदहाल"।18

पत्रकारिता और मीडिया की बदचलनी ने शहर के बिगड़े हुए हालात को संभालने की बजाय और भी बदतर बना दिया था। कहानी के एक पात्र प्रोफेसर ऋषभ इस शहर को किस तरह देखते हैं आप भी गौर फरमाइए" 'हद है यह शहर बिना शोर के बिना तनाव के जग ही नहीं सकता। रंगबाजों का शहर, चरित्रहीनों का शहर, टुच्चे जालसाज पत्रकारों का शहर, माफियाओं और हत्यारों का शहर, बिकाऊ मूल्यों का शहर, किसी को भरोसे में लेकर उसके पैसे उड़ाने वालों का शहर।"[19] यह शहर कभी भी सुकून से नहीं जगता यहां पर सड़क के रोड़े भी आपस में लड़ते हुए जगते हैं।"[20] प्रोफेसर ऋषभ के प्राचार्य महोदय भी इस शहर की बारीकियों से बखूबी परिचित हैं और हो भी क्यों न क्योंकि काफी सालों से यहां रहकर प्रिंसिपली जो कर रहे हैं। आइए उनकी राय भी जान लें कि इस शहर का चरित्र कैसा है। वे कहते हैं 'इस शहर में कोई झुककर नहीं चलता। जिसका सीना बकरी की तरह उठा-उठा होता है, वह भी नहीं। सब तने रहते हैं। छोटा हो या बड़ा कमजोर हो या पहलवान सबके पास फन है जो बिना बात के फनफनाता रहता है, इसलिए शहर में जब चलो तो अपनी चाल में अकड़ रखो, यदि कोई परिचय जानना चाहे तो तुम अपने को राजपूत भूमिहार या यादव कह देना इससे रोब बना रहता है।"[21] अर्थात इस शहर में प्रोफेसर, इंजीनियर, डॉक्टर की कोई कीमत नहीं। कीमत है तो राजपूत की, भूमिहार की और यादवों की।

सामंती विचारधारा और जातिवाद की ऊंची-ऊंची खांइयों ने बिहार को बहुत दिनों तक अपने मकड़जाल में फंसा के रखा। उच्च जातियों के लोगों ने बड़ी-बड़ी खतरनाक सेनाएं बनाई और शहर-दर-शहर, गांव-दर-गांव सब तहस-नहस कर डाला। समाज

में भयानक स्तर पर विभिन्नता है वह कई-कई वर्गों में बंटा है। सब एक-दूसरे के खून के प्यासे हैं लेकिन भाषा के स्तर पर लगभग साम्यवाद है। गोली मारकर खोपड़ी खाली कर देने की बात सब करते हैं, प्रोफेसर और पत्रकार भी डॉक्टर भी मरीज भी रिक्शे वाला भी।"[22] प्रवीण कुमार इस शहर के कमीनेपन से इतने परिचित हैं कि वे इसकी चारित्रिक विशेषताओं को सूत्र शैली में बताते हुए कथा प्रवाह को गति देते रहते हैं। उनकी सूत्र शैली के कुछ उदाहरण यहां पर देखे जा सकते हैं- अफवाहों का शहर है यह।"[23] "इस शहर की बहुसंख्यक आबादी चार रुपये का पान खाकर दिन गुजार देती है।"[24] "यहां हेकड़ी ही पूंजी है।"[25] "यह शहर जंगल है।" यहां हिंसा की पूजा होती है। भोले भाले इंसान को यह शहर धार दे देता है।"[26] "इस शहर का चरित्र अविश्वसनीय है।"[27] "देखने में यह शहर है महसूस करने में सामंत।"[28] "डर इस शहर का स्थाई भाव है।"[29] "इस शहर में कुछ भी क्लियर नहीं।"[30] "ऐसे खतरनाक चरित्र वाले शहर में ऋषभ एक प्रोफेसर बन कर आया था लेकिन शहर के चरित्र ने उसे भी बेचौन करके रख दिया है। वह निष्कर्ष निकालता है कि अनुभूति, सत्य, यथार्थ, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, तकनीक, मीडिया, पत्रकार सब साले निकम्मे हो गए, कुछ भी ठोस नहीं कुछ भी साफ नहीं, चूतिया सब।"[31]

प्रवीण कुमार की यह कहानी मीडिया के वाणिज्यिक मनोविज्ञान को परत दर परत अपने चरित्रों के माध्यम से बयान करती है। कहानीकार प्रवीण कुमार ने वर्तमान दौर की टुच्ची और चिंदीचोर पत्रकारिता जिसके व्यवसायीकरण ने सब कुछ उलट पलट डाला है, की धज्जिया उड़ाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। इस बाजारू मीडिया के औद्योगिक साम्राज्यवाद ने किसी को नही बख्शा। इसने पत्रकार अनूप को पत्रकार कुरूप, भुजंग नाथ को अघोरी नंबर वन, ऋषभ को वृषभ, तन्वी को राजनीति की धन्वी और छबीला को शहर का रंगबाज बना डाला। सिनेमाई भाषा में कहें तो मीडिया के वाणिज्यिक मनोविज्ञान ने अपने लाभ के लिए चमकते चांद को टूटा हुआ तारा बना डाला।

एक शहर को केंद्र में रखकर उसे नायकत्व देना प्रवीण कुमार से बेहतर और कौन समझ सकता है। उन्होंने इस शहर की नब्ज को इतनी बारीकी से पकड़ा है जैसे कि प्राचीन काल में वैद्य नाड़ी को पकड़कर उसका पूरा सजरा बयान कर देते थे। एक शहर को नायक के रूप में पेश करने की कला हालांकि इसके पहले भी हिंदी साहित्य में आजमाई जा चुकी है, जहां गांव या अंचल या एक कस्बे को नायकत्व प्रदान किया गया था, जिसमें मैला आंचल और राग दरबारी का शिवपाल गंज अति प्रसिद्ध है लेकिन जिस विधान और रचना-प्रक्रिया की गंभीरता से लैस होकर प्रवीण कुमार ने इस शहर का क्रिएशन किया है, वह वाकई हिंदी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगा।

## संदर्भ ग्रंथ


1.असंतोष और असुरक्षा के साए में, रामशरण जोशी, समयांतर, फरवरी 2011, पृष्ठ संख्या-48

2.मीडिया मिशन से बाजारीकरण तक, रामशरण जोशी, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर 2008, पृष्ठ संख्या- 54, 55

3.साहित्य के नए दायित्व, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1991, पृष्ठ संख्या- 92,93

4.आधुनिक पत्रकारिता, अर्जुन तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2004, पृष्ठ संख्या- 2

5.मीडिया का वर्तमान परिदृश्य,राकेश प्रवीर, भूमिका से साभार, द्वारा विजय दत्त श्रीधर, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 2020

6.छबीला रंगबाज का शहर, प्रवीण कुमार, अखिलेश संपादित पत्रिका तद्भव के अंक 29 में प्रकाशित, पृष्ठ संख्या- 16

7.वही पृष्ठ संख्या- 168

8.वही पृष्ठ संख्या -169

9.वही पृष्ठ संख्या -168

10.वही पृष्ठ संख्या- 179

11.वही पृष्ठ संख्या -180

12.वही पृष्ठ संख्या- 182

13.मीडिया का वर्तमान परिदृश्य, राकेश प्रवीर, भूमिका से साभार, द्वारा विजय दत्त श्रीधर, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 2020

14.छबीला रंगबाज का शहर पृष्ठ संख्या-214

15.वही पृष्ठ संख्या -198

16.वही पृष्ठ संख्या-199, 200

17.वही पृष्ठ संख्या-124

18.बिहार में पत्रकारिता का इतिहास, श्री विजय भास्कर प्राक्कथन से साभार, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 2013

19.छबीला रंगबाज का शहर पृष्ठ संख्या-200

20.वही पृष्ठ संख्या-170

21.वही पृष्ठ संख्या-170

22.वही पृष्ठ संख्या-170, 171

23.वही पृष्ठ संख्या -174

24.वही पृष्ठ संख्या -176

25.वही पृष्ठ संख्या -176

26.वही पृष्ठ संख्या -177

27.वही पृष्ठ संख्या -186

28.वही पृष्ठ संख्या -201

29.वही पृष्ठ संख्या -208

30.वही पृष्ठ संख्या -190

31.वही पृष्ठ संख्या -215